आदिवासी विमर्श

डॉ. परमेश्वर जिजाराव काकडे,
सहा. प्राध्यापक हिंदी विभाग,
जनता शिक्षण प्रसारक मंडल सं.
महिला कला महाविद्यालय, औरंगाबाद.
Mobile No. 8830934941
Email- kakdepj@gmail.com

भूमिका :

आदिवासी विमर्श एक अस्मितामूलक विमर्श है जो बीसवीं सदी के अंतिम दशकों में शुरू हुआ । इसके केंद्र में आदिवासियों के जल, जंगल, भूमि और जीवन की चिंताएं समाहित हैं । ऐसा माना जाता है कि सन् 1991 के बाद भारत में शुरू हुए उदारीकरण और मुक्त व्यापार व्यवस्था ने भी आदिम काल से जमा हुई आदिवासी संपत्ति की लूट का मार्ग प्रशस्त किया । विशाल और बहुत शक्तिशाली बहुराष्ट्रीय और स्वदेशी कंपनियों ने आदिवासी समुदायों को उनके पानी, जंगल और जमीन से बेदखल कर दिया है । इससे आदिवासी क्षेत्रों में बड़े पैमाने पर विस्थापन हुआ । झारखंड, छत्तीसगढ़, दार्जिलिंग आदि क्षेत्रों से बड़ी संख्या में लोग दिल्ली, कोलकाता आदि बड़े शहरों में आने को मजबूर हुए । इन आदिवासी लोगों के पास न तो धन था । शहरों में इनको घरेलू नौकर बनने के लिए मजबूर किया जाता था । विशाल महानगर ने उनकी संस्कृति, लोक गीतों और साहित्य को भी निगल लिया । नई पीढ़ी के कुछ आदिवासी लोगों ने अवसर का लाभ उठाकर सत्ता हासिल की । उन्होंने सचेत रूप से अपने समाज के सामाजिक और सांस्कृतिक हितों की रक्षा के लिए आवाज उठाना शुरू कर दिया । उन्होंने संगठन भी बनाए । आदिवासियों ने अपने लिए इतिहास को फिर से खोजा । उन्होंने अपने नेताओं को पहचाना । इसने एक शक्तिशाली आदिवासी साहित्य को भी जन्म दिया ।

आदिवासी शब्द दो शब्दों से मिलकर बना है, 'आदि' और 'वासी' आदि का अर्थ है 'देशी' और 'वासी' का अर्थ है 'निवासी' इसलिए आदिवासी का अर्थ है पृथ्वी के मूल निवासी, जो घने जंगलों, ऊंचे पहाड़ों और सुदूर घाटियों में रहने वाले लोग । आदिवासी वे हैं जो सभ्य दुनिया से दूर पहाड़ों और जंगलों में दूर–दराज के स्थानों में रहते हैं, एक ही आदिवासी बोली का उपयोग करते हैं और ज्यादातर मांसाहारी और अर्ध–नग्न होते हैं । आदिवासी का शाब्दिक अर्थ आदिकाल से देश में रहने वाली जाति है । भारत में आदिवासियों को कई नामों से पुकारा जाता है जैसे आदिवासी, देशी, जनजाति, वनवासी, जंगल, जनजाति, जंगली आदि । "आदिवासी विमर्श आदिवासी की पहचान, उसके अस्तित्व के संकट और उसके खिलाफ चल रहे प्रतिरोध पर भी एक साहित्य है । यह देश के मूल निवासियों के वंशजों के साथ भेदभाव के खिलाफ है । यह जल, जंगल, भूमि और जीवन की रक्षा के लिए आदिवासियों के आत्मनिर्णय के अधिकार की मांग करता है ।"[1] "आदिवासी साहित्य से तात्पर्य उस साहित्य से है जिसमें आदिवासियों का जीवन और समाज उनके दर्शन के अनुरूप अभिव्यक्त हुआ हो । आदिवासी साहित्य को विभिन्न जगहों पर विभिन्न नामों से जाना जाता है। यूरोप और अमेरिका में इसे नेटिव अमेरिकन लिटरेचर, कलर्ड लिटरेचर, स्लेव लिटरेचर और अफ्रीकन–अमेरिकन लिटरेचर, अफ्रीकन देशों में ब्लैक लिटरेचर और ऑस्ट्रेलिया में एबोरिजिनल लिटरेचर, तो अंग्रेजी में इंडीजिनस लिटरेचर, फर्स्टपीपुल लिटरेचर और ट्राइबल लिटरेचर कहते हैं । भारत में इसे हिंदी एवं अन्य भारतीय भाषाओं में

सामान्यतः 'आदिवासी साहित्य' कहा जाता है ।"[2] आदिवासी साहित्य लेखन विविधताओं को अपने अंदर समेटे हुए है । समृद्ध मौखिक साहित्य परंपरा का लाभ भी आदिवासी साहित्यकारों को मिला है। उपन्यास, कहानी, कविता, नाटक, यात्रा वृत्तांत आदि प्रमुख विधाओं में आदिवासी एवं गैर–आदिवासी रचनाकारों ने आदिवासी जीवन और समाज का चित्रण प्रस्तुत किया है । आदिवासी समाज 'आत्म' से अधिक सामूहिकता में विश्वास करता है, अतः उसकी परंपरा, संस्कृति, इतिहास से लेकर शोषण और प्रतिरोध आदि में सामूहिक जीवन की अभिव्यक्ति होती है । स्त्री–विमर्श एवं दलित– विमर्श की भाँति आदिवासी साहित्य में आत्मकथात्मक लेखन की कोई केन्द्रीय विधा नहीं है । इस संदर्भ में गंगा सहाय मीणा का मानना है कि– "आदिवासी लेखन में आत्मकथात्मक लेखन केन्द्रीय स्थान नहीं बना सका क्योंकि स्वयं आदिवासी समाज 'आत्म' से अधिक समूह में विश्वास करता है।"[3] आदिवासी साहित्य की परंपरा का अध्ययन करने के लिए आदिवासी साहित्य के स्रोतों का अध्ययन आवश्यक है । इस संदर्भ में वंदना टेटे का कहना है कि, "आदिवासी साहित्य मूलतः सृजनात्मकता का साहित्य है। यह इंसान के उस दर्शन को अभिव्यक्त करने वाला साहित्य है जो मानता है कि प्रकृति सृष्टि में जो कुछ भी है, जड़–चेतन, सभी कुछ सुंदर है । वह दुनिया को बचाने के लिए सृजन कर रहा है । उसकी चिंताओं में पूरी सृष्टि, समष्टि और प्रकृति है। जिसका एक प्रमुख अंग इन्सान भी है ।"[4] सबसे पहले यह रेखांकित करना जरूरी है कि हमें इस विषय पर साहित्य के पूर्व–निर्धारित प्रतिमानों और पूर्वाग्रहों से मुक्त होकर सोचना चाहिए । हमारी पारंपरिक समझ यह है कि सबसे अच्छा साहित्य एक महानगर में एक प्रमुख भाषा में एक प्रसिद्ध प्रकाशक द्वारा प्रकाशित, सम्मानित, प्रशंसित, गैर–पाठ्यचर्या पुस्तक है । इस प्रक्रिया में अक्सर साहित्यिक पुस्तकों की चर्चा होती है । आदिवासी साहित्य की अवधारणा पर विचार करते हुए हमें इस प्रथा को छोड़ना होगा । तभी हम आदिवासी साहित्य के हस्ताक्षर स्रोत सामग्री का चयन कर सकेंगे और इसकी परंपराओं का पता लगा सकेंगे । आदिवासी भाषाओं और मौखिक परंपराओं में रचित साहित्य आदिवासी साहित्य का प्राथमिक स्रोत है । मुद्रित भाषा में लिखे गए आदिवासी साहित्य को केवल हिंदी में कहना उचित नहीं है । मौखिक साहित्य इसका आधार है । आदिवासी साहित्य की परंपरा को तीन भागों में बांटा जा सकता है:

1. पुरखा साहित्य।
2. आदिवासी भाषाओं में लिखित साहित्य की परंपरा ।
3. समकालीन हिंदी आदिवासी लेखन।

पुरखा साहित्य:–

यह साहित्य आदिवासी दर्शन और साहित्य की नींव है । पुरखा साहित्य आदिवासी समाज में हजारों वर्षों से चली आ रही मौखिक साहित्य की परंपरा है । इसे 20 वीं सदी में संकलित, संपादित और प्रकाशित भी किया गया है । आदिवासी विचारक इस मौखिक परंपरा को मौखिक साहित्य या लोक साहित्य के स्थान पर पुरखा साहित्य कहते हैं । इसके पीछे एक अहम तर्क है । पहली बात तो यह कि मौखिक साहित्य कहने से पता ही नहीं चलता कि कैसा मौखिक साहित्य? दुनिया के सभी समाजों में लिखित से पहले मौखिक साहित्य की परंपरा रही है । इसके अलावा, आदिवासी विचारक आदिवासी मौखिक परंपराओं को पैतृक साहित्य कहते हैं । इस प्रक्रिया में वे इसे लोक साहित्य से अलग करते हैं । इस सन्दर्भ में आदिवासी विचारक वंदना टेटे लिखती हैं कि चूँकि जनजातीय समाज में लोक और विज्ञान में बाहरी समाज की तरह कोई अंतर नहीं है, इसलिए साहित्य को भी विभाजित नहीं किया जा सकता है । चूंकि आदिवासी समाज और संस्कृति में पूर्वजों का बहुत महत्व है और मौखिक परंपरा में पाए जाने वाले गीत, कहानियाँ आदि भी पूर्वजों द्वारा रचित हैं, इसलिए इस मौखिक परंपरा को सामूहिक रूप से पुश्तैनी साहित्य कहा जाना चाहिए ।

पुरखा साहित्य की एक समृद्ध परंपरा सभी आदिवासी भाषाओं में मौजूद है । इसके माध्यम से हम उनके जीवन–दर्शन, ज्ञान परंपरा, मूल्य–विश्वास आदि को जान सकते हैं । इसलिए आदिवासी जीवन को जानने के लिए पुश्तैनी साहित्य का संग्रह और संरक्षण करना बहुत जरूरी है । इस दिशा में विद्वानों ने थोड़ा बहुत काम किया है लेकिन बहुत काम किया जाना बाकी है । पुरखा साहित्य की परंपरा देश में 300 से अधिक आदिवासी भाषाओं में फैली हुई है । इसके संकलन और संपादन में बहुत सावधानी की आवश्यकता है । अक्सर हम अपने पूर्वाग्रहों के साथ संग्रह शुरू करते हैं और हमारे पूर्वाग्रह पाठ अनुसंधान के बीच में होते हैं । संकलन के लिए जनजातीय दर्शन और संबंधित भाषाओं का ज्ञान आवश्यक है। उपलब्ध पुरखा साहित्य में दो–तीन लक्षण सामान्य हैं – पूर्वजों के प्रति कृतज्ञता की भावना, प्रकृति और प्रेम के प्रति गहरी संवेदनशीलता, बाहरी समाज के हमलों के प्रति जागरूकता, अपनी परंपरा और संस्कृति की रक्षा करने की भावना आदि । आदिवासियों पर बाहरी समाजों के हमलों का इतिहास काफी पुराना है और इसके प्रति आदिवासी पूर्वजों की जागरूकता भी उतनी ही पुरानी है । यहाँ एक उदाहरण प्रस्तुत है–

"रास्ते में एक जोड़ा जो लूदम फूल है
उस फूल को ऐ बेटी, किसने तोड़ लिया?
रास्ते में अटल फूल की जो कतार है
हे बेटी, किसने छिनगा लिया?
चमचमाते हुए शिकारी
शिकारियों ने फूल तोड़ लिया
झलकते हुए अहेरी
अहेरियों ने डाल को छिनगा दिया
शिकारियों ने जो फूल को तोड़ा
हे बेटी, चोटी से ही तोड़ लिया ।
अहेरियों ने जो डाल को छिनगा दिया
सों हे बेटी, नीचे से ही छिनगा दिया !
शिकारियों ने जो फूल को तोड़ा
हे बेटी, उसकी फुनगी मुरझा गई
अहेरियों ने जो छिनगा दिया,
हे बेटी, उसका तना कुम्हला गया !"
बांसुरी बज रही है

(मुंडारी गीतों का संकलन) – जगदीश त्रिगुणायत

उपरोक्त गीत मुंडारी पुरखा गीत का हिंदी अनुवाद है । ऐसी सामग्री सभी जनजातीय भाषाओं में बिखरी हुई है । इसके प्रति एक सही दृष्टिकोण विकसित करने और इसे बचाने की आवश्यकता है ताकि आदिवासी दर्शन और साहित्य, साहित्य परंपरा से अवगत हो सकें ।

आदिवासी भाषाओं में रचित साहित्य की परंपराएं :

आदिवासी भाषाओं में लिपियों का विकास लगभग डेढ़ सौ साल पहले शुरू हुआ था । एक दर्जन से अधिक आदिवासी भाषाओं की लिपियाँ अभी तक तैयार नहीं हुई हैं । कई आदिवासी भाषाओं ने पड़ोसी या बड़ी भाषा की लिपि को अपनाया है ।

आदिवासी भाषाओं में लिखने और छापने की परंपरा भी सौ साल से अधिक पुरानी है। इस परंपरा को और जांच की जरूरत है। मौजूदा स्रोत सामग्री के अनुसार, मेनस ओडे द्वारा 'मटुरा कहानी' नामक मुंडारी उपन्यास पहला आदिवासी उपन्यास है। यह 20 वीं सदी के दूसरे दशक में लिखा गया था। इसके एक हिस्से का हिंदी में अनुवाद 'चलो चाय बागान' शीर्षक से किया गया था।

आदिवासी भाषाओं में लिखे गए साहित्य का महत्व यह है कि भले ही इसमें ग्रंथ बाहरी समाजों और भाषाओं से लिए गए हों, लेकिन लेखक अपनी मातृभाषा में लिख रहा है, इसलिए व्यक्त विचार और दर्शन में मौलिकता बनी हुई है। उत्तर पूर्व की खासी, गारो आदि भाषाओं में वीर गाथाओं की लंबी परंपरा है। इसका धीरे–धीरे हिंदी जैसी अन्य भाषाओं में अनुवाद किया जा रहा है। अनेक जनजातीय भाषाओं के लेखन में जाए बिना जनजातीय साहित्य के बारे में गैर–आदिवासी भाषाओं में मिलने वाली सामग्री पर आधारित एक राय अधूरी और भ्रामक होगी। अब हर साल आदिवासी भाषाओं में सैकड़ों किताबें प्रकाशित होती हैं। हालांकि, स्पष्ट समझ के अभाव में इसे आदिवासी लोक साहित्य कहा जाता है।

समसामयिक हिंदी जनजातीय लेखन :

पुरखा साहित्य और आदिवासी भाषाओं के लिखित साहित्य से प्रेरणा लेकर उन्होंने विदेशी साहित्य के प्रभाव में हिंदी, बांग्ला, तमिल, मलयालम, उड़िया आदि प्रमुख भाषाओं में भी लिखना शुरू किया। हर भाषा के शुरू होने के समय में थोड़ा सा अंतर होता है। हिंदी में इसकी शुरुआत तीन दशक पहले से मानी जा सकती है। हिंदी लेखकों के प्रभाव में आदिवासियों ने मुंडारी, संताली, खड़िया आदि भाषाओं को छोड़कर हिंदी में लिखना शुरू किया। यद्यपि उनकी अधिकांश रचनाएँ छोटे–छोटे प्रकाशनों में छपी हैं या अप्रकाशित हैं, लेकिन पिछले तीन दशकों में हिंदी में सक्रिय आदिवासी साहित्यकारों की संख्या कई दर्जन है। कविताओं के अलावा, उन्होंने कहानियाँ और उपन्यास लिखे हैं, उनमें से कुछ ने व्यंग्य, संस्मरण, यात्रा वृत्तांत आदि में अपना हाथ आजमाया है। हिंदी आदिवासी कविता में पहला नाम सुशीला समद का है लेकिन इसके बाद इसमें निरंतरता का अभाव दिखाई देता है। इसलिए हम रामदयाल मुंडा की कविताओं के साथ समकालीन हिंदी आदिवासी कविता की शुरुआत पर विचार कर सकते हैं, जिन्होंने मुंडारी के साथ हिंदी में कविताएं भी लिखीं, उसके बाद ग्रेस कुजुर रोज केरकेट्टा, हरिराम मीणा, महादेव टोप्पो, निर्मला पुतुल, वंदना टेटे, विजय सिंह मीणा, ज्योति लकड़ा, अनुज लुगुन, जसिता केरकेट्टा आदि उल्लेखनीय नाम हैं। कहानी लेखन के क्षेत्र में वाल्टर भेंग्रा, तरुण, पीटर पॉल एक्का, रोज केरकेट्टा, मुंगल सिंह मुंडा, विजय सिंह मीणा आदि प्रमुख हैं। उन्होंने आदिवासी साहित्य में सैकड़ों कहानियों और लगभग आधा दर्जन उपन्यासों का योगदान दिया है। भारत के आदिवासियों की समग्र स्थिति वही है जो आज़ादी से पहले थी वहीं आजादी के बाद भी देखी जा सकती है। हालाँकि, भारतीय संविधान ने आदिवासियों को कई अधिकार प्रदान किए हैं। आदिवासी जीवन पर आधारित कई उपन्यासों में इन विसंगतियों का चित्र मिलता है। व्यंग्य और कहानी दोनों में शंकरलाल मीणा सक्रिय हैं। हरिराम मीणा ने यात्रा वृतांत और संस्मरण भी लिखे है। "स्वतंत्र भारत के संविधान में दलित आदिवासी गरीबों को आत्मसम्मान से जिने का अधिकार प्रदान किया गया है फिर भी स्वार्थ लिप्त भ्रष्ट लोग और सामंती प्रवृत्ति वाले ठेकेदार षडयंत्र से, बेईमानी से कूटनीति से दलित आदिवासी गरीबों के आत्मसम्मान के साथ खिलवाड़ करते हुए इनकी इज्जत को नीलाम करने की पूरी व्यवस्था करते हैं।"[5]

निष्कर्ष–

समकालीन हिंदी साहित्य के विमर्शो में आदिवासी विमर्श एक प्रमुख विमर्श के रूप में उभरकर सामने आया है। समकालीन हिंदी साहित्य में आदिवासी विमर्श अपनी ठोस उपस्थिति दर्ज कर रहा है। आदिवासी विमर्श में इस समय आदिवासी और गैर आदिवासी दोनों तरह के साहित्यकार अपने लेखन से इस विमर्श को नई ऊंचाईयाँ दे रहे हैं। निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि समकालीन आदिवासी लेखन अपनी पैतृक परम्पराओं तथा बाह्य समाज एवं साहित्य के साथ अन्तःक्रिया कर तथा

आदिवासी जीवन एवं दर्शन को अभिव्यक्त कर अपनी सार्थक उपस्थिति को अभिव्यक्त करते हुए सृजन के क्षेत्र में नये प्रयोग कर रहा है । इस प्रकार हम देखते हैं कि आदिवासी साहित्य हिंदी जैसी गैर–आदिवासी भाषाओं में न केवल एक उभरती हुई प्रवृत्ति और साहित्यिक आंदोलन है, बल्कि आदिवासी भाषाओं में इसकी गहरी जड़ें और एक लंबी परंपरा है । इसके बारे में एक राय बनाने के लिए पूरी परंपरा का अध्ययन आवश्यक है ।

सन्दर्भ :

1. https://hi.wikibooks.org/wiki
2. मुक्त ज्ञानकोश विकिपीडिया से
3. मीणा, गंगा सहाय (सं.), आदिवासी साहित्य विमर्श, पृष्ठ सं. 10
4. टेटे, वंदना, आदिवासी साहित्य : परंपरा और प्रयोजन, पृष्ठ सं. 87–88
5. डॉ. प्रकाश चन्द्र मेहता, आदिवासी संस्कृति एवं प्रथाएँ–पृष्ठ सं. 171.

X-X-X-X-X-X-X-X-X-X-X-X-X-X